आसावरी

हमारा अनुपम काव्य-साहित्य

आसावरी

'नी र ज'

आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

लेखक की अन्य रचनाएँ

दर्द दिया है (पुरस्कृत कविता-संग्रह)	४.५०
दर्द दिया है (सस्ता संस्करण)	३.००
प्राण-गीत (कविता-संग्रह)	३.००
बादर बरस गयो (कविता-संग्रह)	३.००
दो गीत (कविता-संग्रह)	१.५०
नदी किनारे (कविता-संग्रह)	१.५०
लहर पुकारे (कविता-संग्रह)	३.००
नीरज की पाती (कविता में)	२.००
मुक्तकी (रुबाइयों का संग्रह)	१.००
लिख-लिख भेजत पाती (पत्रों का संग्रह)	३.००

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली–६

प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली–६

मूल्य	:	**२ रुपए ५० नए पैसे**
प्रथम संस्करण	:	अक्तूबर, १९५८
आवरण	:	ना. मा. इंगोले
चित्रकार	:	योगेन्द्रकुमार 'लल्ला'
मुद्रक	:	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

माँ के पूज्य चरणों

में

क्रम

दीप और मनुष्य

१

एक दिन मैंने कहा यूँ दीप से
'तू धरा पर सूर्य का अवतार है,
किसलिये फिर स्नेह बिन मेरे बता
तू न कुछ, बस धूल-कण निस्सार है?'

लौ रही चुप, दीप ही बोला मगर
'बात करना तक तुझे आता नहीं,
सत्य है सिर पर चढ़ा जब दर्प हो
आँख का परदा उघर पाता नहीं।

मूढ़! खिलता फूल यदि निज गंध से
मालियों का नाम फिर चलता कहाँ?
मैं स्वयं ही आग से जलता अगर
ज्योति का गौरव तुझे मिलता कहाँ?'

हर दर्पन तेरा दर्पन है
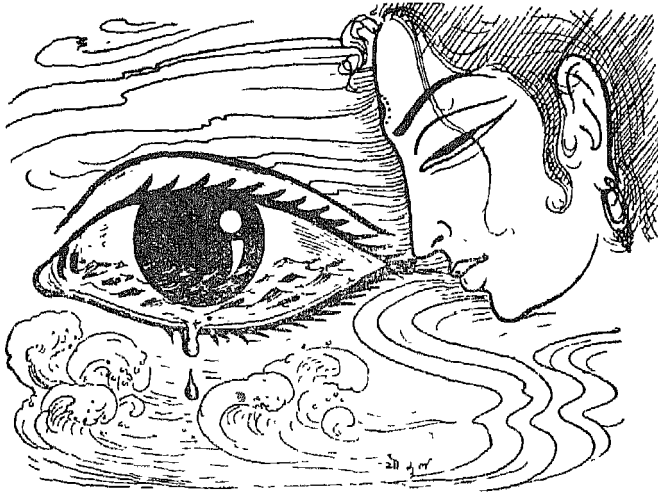
२

हर दर्पन तेरा दर्पन है, हर चितवन तेरी चितवन है,
मैं किसी नयन का नीर बनूँ, तुझको ही अर्घ्य चढ़ाता हूँ !

नभ की बिंदिया चंदावाली, भू की अंगिया फूलोंवाली,
सावन की ऋतु झूलोंवाली, फागुन की ऋतु भूलोंवाली,
कजरारी पलकें शरमीली, निंदियारी अलकें उरझीली,
गीतोंवाली गोरी ऊषा, सुधियोंवाली संध्या काली,
हर चूनर तेरी चूनर है, हर चादर तेरी चादर है,
मैं कोई घूँघट छुऊँ, तुझे ही बेपरदा कर आता हूँ !
हर दर्पन तेरा दर्पन है !!

यह कलियों की आनाकानी, यह अलियों की छीनाछोरी,
यह बादल की बूँदाबाँदी, यह बिजली की चोराचोरी,
यह काजल का जादू-टोना, यह पायल का शादी-गौना,
यह कोयल की कानाफूँसी, यह मैना की सीनाजोरी,
हर क्रीड़ा तेरी क्रीड़ा है, हर पीड़ा तेरी पीड़ा है,
मैं कोई खेलूँ खेल, दाँव तेरे ही साथ लगाता हूँ!
हर दर्पन तेरा दर्पन है!!

तपसिन कुटियाँ, बैरिन बगियाँ, निर्धन खंडहर, धनवान महल,
शौकीन सड़क, ग़मगीन गली, टेढ़े-मेढ़े गढ़, गेह सरल,
रोते दर, हँसती दीवारें, नीची छत, ऊँची मीनारें,
मरघट की बूढ़ी नीरवता, मेलों की क्वाँरी चहल-पहल,
हर देहरी तेरी देहरी है, हर खिड़की तेरी खिड़की है,
मैं किसी भवन को नमन करूँ, तुझको ही शीश झुकाता हूँ!
हर दर्पन तेरा दर्पन है!!

पानीका स्वर रिमझिम-रिमझिम, माटीका रव रुनझुन-रुनझुन,
बातून जनम की कुनुनमुनन, खामोश मरण की गुपुनचुपुन,
नटखट बचपन की चलाचली, लाचार बुढ़ापे की थमथम,
दुख का तीखा-तीखा क्रन्दन, सुख का मीठा-मीठा गुंजन
हर वाणी तेरी वाणी है, हर वीणा तेरी वीणा है,
मैं कोई छेड़ँ तान, तुझे ही बस आवाज़ लगाता हूँ!
हर दर्पन तेरा दर्पन है!!

काले तन या गोरे तन की, मैले मन या उजले मन की,
चाँदी-सोने या चन्दन की, औगुन-गुन की या निर्गुन की,
पावन हो या कि अपावन हो, भावन हो या कि अभावन हो,
पूरब की हो या पश्चिम की, उत्तर की हो या दक्खिन की,
हर मूरत तेरी मूरत है, हर सूरत तेरी सूरत है,
मैं चाहे जिसकी माँग भरूँ, तेरा ही ब्याह रचाता हूँ!
हर दर्पन तेरा दर्पन है!!

अधिकार सबका है बराबर

३

फूल पर हँसकर अटक तो, शूल को रोकर झटक मत,
ओ पथिक ! तुझ पर यहाँ अधिकार सबका है बराबर !

बाग़ है यह : हर तरह की वायु का इसमें गमन है,
एक मलयज की वधू तो एक आँधी की बहन है,
यह नहीं मुमकिन कि मधुऋतु देख तू पतझर न देखे,
कीमती कितनी कि चादर हो पड़ी सब पर शिकन है,
दो बरन के सूत की माला प्रकृति है, किन्तु फिर भी—
एक कोना है जहाँ शृंगार सबका है बराबर !

फूल पर हँसकर अटक तो, शूल को रोकर झटक मत,
ओ पथिक ! तुझ पर यहाँ अधिकार सबका है बराबर !

कोस मत उस रात को जो पी गई घर का सबेरा,
रूठ मत उस स्वप्न से जो हो सका जग में न तेरा,
खीज मत उस वक्त पर, दे दोष मत उन बिजलियों को—
जो गिरीं तब तब कि जब जब तू चला करने बसेरा,
सृष्टि है शतरंज औ' हैं हम सभी मोहरे यहाँ पर
शाह हो पैदल कि शह पर वार सबका है बराबर!

फूल पर हँसकर अटक तो, शूल को रोकर झटक मत,
ओ पथिक! तुझ पर यहाँ अधिकार सबका है बराबर!

है अदा यह फूल की छूकर उँगलियाँ रूठ जाना,
स्नेह है यह शूल का चुभ उम्र छालों की बढ़ाना,
मुश्किलें कहते जिन्हें हम राह की आशीष है वह,
और ठोकर नाम है—बेहोश पग को होश आना,
एक ही केवल नहीं, हैं प्यार के रिश्ते हज़ारों
इसलिये हर अश्रु को उपहार सबका है बराबर!

फूल पर हँसकर अटक तो, शूल को रोकर झटक मत,
ओ पथिक! तुझ पर यहाँ अधिकार सबका है बराबर!

देख मत तू यह कि तेरे कौन दाँयें कौन बाँयें,
तू चलाचल बस कि सब पर प्यार की करता हवायें,
दूसरा कोई नहीं, विश्राम है दुश्मन डगर पर
इसलिये जो गालियाँ भी दे उसे तू दे दुआयें,
बोल कड़ुवे भी उठाले, गीत मैले भी धुलाले,
क्योंकि बगिया के लिये गुंजार सबका है बराबर!

फूल पर हँसकर अटक तो, शूल को रोकर झटक मत,
ओ पथिक! तुझ पर यहाँ अधिकार सबका है बराबर!

एक बुलबुल का जला कल आशियाना जब चमन में,
फूल मुस्काते रहे, छलका न पानी तक नयन में,
सब मगन अपने भजन में, था किसी को दुख न कोई,
सिर्फ़ कुछ तिनके पड़े सिर धुन रहे थे उस हवन में,
हँस पड़ा मैं देख यह तो एक झरता पात बोला—
'हो मुखर या मूक हाहाकार सबका है बराबर !'

फूल पर हँसकर अटक तो, शूल को रोकर झटक मत,
ओ पथिक ! तुझ पर यहाँ अधिकार सबका है बराबर !

यदि वाणी भी मिल जाये दर्पन को

४

सुन्दरता खुद से ही शरमा जाये
यदि वाणी भी मिल जाये दर्पण को !

खुबसूरत है हर फूल मगर उसका
कब मोल चुका पाया है सब मधुबन ?
जब प्रेम समर्पण देता है अपना
सौन्दर्य तभी करता है निज दर्शन,

अर्पण है सृजन और रूपान्तर भी,
पर अन्तर-योग बिना है नश्वर भी,
सच कहता हूँ हर मूरत बोल उठे
दो अश्रु हृदय दे दे यदि पाहन को !

सुन्दरता खुद से ही शरमा जाये
यदि वाणी भी मिल जाये दर्पण को !

सौ बार भरी गगरी आ बादल ने
प्यासी पुतली यह किन्तु रही प्यासी,
साँसों ने जाने कैसा शाप दिया
बन गई देह हर मरघट की दासी,

दुख ही दुख है जग में सब ओर कहीं,
लेकिन सुख का यह कहना झूठ नहीं,
'सब की सब सृष्टि खिलौना बन जाये
यदि नज़र उमर की लगे न बचपन को!'

सुन्दरता ख़ुद से ही शरमा जाये
यदि वाणी भी मिल जाये दर्पण को!

रुक पाई अपनी-हँसी न कलियों से
दुनियाँ ने लूट इसी से ली बगिया,
इस कारण कालिख मुख पर मली गई
बदशक्ल रात पर मरने लगा दिया,

तुम उसे गालियाँ दो, कुछ बात नहीं
लेकिन शायद तुमको यह ज्ञात नहीं,
आदमी देवता ही होता जग में
भावुकता अगर न मिलती यौवन को!

सुन्दरता ख़ुद से ही शरमा जाये
यदि वाणी भी मिल जाये दर्पण को!"

है धूल बहुत नाचीज़ मगर मिटकर
दे गई रूप अनगिन प्रतिमाओं को,
पहरेदारी में किसी घोंसले की
तिनके ने रक्खा क़ैद हवाओं को,

निर्धन दुर्बल है, सबका नौकर है
औ' धन हर मठ-मन्दिर का ईश्वर है,
लेकिन मुश्किलें बहुत कम हो जायें
यदि कंचन कहे ग़रीब न रजकण को !

सुन्दरता ख़ुद से ही शरमा जाये
यदि वाणी भी मिल जाये दर्पण को !

चन्दन की छाँव रहे विषधर लेकिन
मर पाया ज़हर न उनके बोलों का,
पर पिया पिया का राग पपीहे को
आ सिखला गया वियोग बादलों का,

चाहे सागर को कंगन पहनाओ
चाहे नदियों की चूनर सिलवाओ,
उतरेगा स्वर्ग तभी इस धरती पर
जब प्रेम लिखेगा ख़त परिवर्तन को !

सुन्दरता ख़ुद से ही शरमा जाये
यदि वाणी भी मिल जाये दर्पण को !

ओ प्यासे अधरोंवाली !

५

ओ प्यासे अधरोंवाली ! इतनी प्यास जगा
बिन जल बरसाये यह घनश्याम न जा पाये !

गरजी-बरसीं सौ बार घटायें धरती पर
गूँजी मल्हार की तान गली-चौराहों में
लेकिन जब भी तू मिली मुझे आते-जाते
देखी रीती गगरी ही तेरी बाहों में,
सब भरे-पुरे तब प्यासी तू,
हँसमुख जब विश्व, उदासी तू,
ओ गीले नयनोंवाली ! ऐसे आँज नयन
जो नज़र मिलाये तेरी मूरत बन जाये !

ओ प्यासे अधरोंवाली ! इतनी प्यास जगा
बिन जल बरसाये यह घनश्याम न जा पाये !

रेशम के झूले डाल रही है झूल धरा
आ आ कर द्वार बुहार रही है पुरवाई,
लेकिन तू धरे कपोल हथेली पर बैठी
है याद कर रही जाने किसकी निठुराई,
जब भरी नदी तू रीत रही,
जी उठी धरा, तू बीत रही,
ओ सोलह सावनवाली ! ऐसे सेज सजा
घर लौट न पाये जा घूँघट से टकराये !

ओ प्यासे अधरोंवाली ! इतनी प्यास जगा
बिन जल बरसाये यह घनश्याम न जा पाये !

पपिहे के कंठ पिया का गीत थिरकता है,
रिमझिम की वंशी बजा रहा घनश्याम झुका,
है मिलन प्रहर नभ-आलिंगन कर रही भूमि
तेरा ही दीप अटारी में क्यों चुका चुका,
तू उन्मन जब गुंजित मधुबन,
तू निर्धन जब बरसे कंचन,
ओ चाँद लजानेवाली ! ऐसे दीप जला
जो आँसू गिरे सितारा बनकर मुस्काये !

ओ प्यासे अधरोंवाली ! इतनी प्यास जगा
बिन जल बरसाये यह घनश्याम न जा पाये !

बादल खुद आता नहीं समुन्दर से चलकर
प्यास ही धरा की उसे बुलाकर लाती है,
जुगनू में चमक नहीं होती, केवल तम को
छूकर उसकी चेतना ज्वाल बन जाती है,

सब खेल यहाँ पर है धुन का,
जग ताना-बाना है गुन का,
ओ सौ गुनवाली ! ऐसी धुन की गाँठ लगा
सब बिखरा जल सागर बन बनकर लहराये !

ओ प्यासे अधरोंवाली ! इतनी प्यास जगा
बिन जल बरसाये यह घनश्याम न जा पाये !

कोई मोती गूँथ सुहागिन !

६

कोई मोती गूँथ सुहागिन ! तू अपने गलहार में
मगर बिदेसी रूप न बँधनेवाला है सिंगार में !

एक हवा का झोंका जीवन, दो क्षण का मेहमान है,
अरे ठरहना कहाँ, यहाँ गिरवीं हर एक मकान है,
व्यर्थ सुनहरी धूप और यह व्यर्थ रूपहरी चाँदनी,
हर प्रकाश के साथ किसी अँधियारे की पहचान है,
चमकीली चोली-चुनरी पर मत इतरा यूँ साँवरी !
सबको चादर यहाँ एक सी मिलती चलती बार में !

कोई मोती गूँथ सुहागिन ! तू अपने गलहार में
मगर बिदेसी रूप न बँधनेवाला है सिंगार में !

ये गुलाब से गाल इन्हें ऋण देना है पतझार का,
चढ़ती हुई उमर पर पानी है मौसमी फुहार का,
अधरों की यह वंशी जो चुम्बन के गीत सुना रही
होगी कल ख़ामोश उठेगा डोला जब उस पार का,
दर्पण में मुख देख देख मत अपनी छवि पर रीझ यूँ
पड़ती जाती है दरार छिन छिन तन की दीवार में !

कोई मोती गूँथ सुहागिन ! तू अपने गलहार में
मगर बिदेसी रूप न बँधनेवाला है सिंगार में !

श्यामल यमुना से केशों में गंगा करती वास है,
भोगी अंचल की छाया में सिसक रहा संन्यास है,
म्हावर-मेंहदी, काजल-कंघी गर्व तुझे जिनपर बड़ा
मुट्ठी भर मिट्टी ही केवल इन सबका इतिहास है,
नटखट लट का नाग जिसे तू भाल बिठाये घूमती
अरी ! एक दिन तुझको ही डस लेगा भरे बज़ार में !

कोई मोती गूँथ सुहागिन ! तू अपने गलहार में
मगर बिदेसी रूप न बँधनेवाला है सिंगार में !

कल जिस ठौर खड़ी थी दुनियाँ आज नहीं उस ठाँव है,
जिस आँगन थी धूप सुबह, उस आँगन में अब छाँव है,
प्रतिपल नूतन जन्म यहाँ पर प्रतिपल नूतन मृत्यु है,
देख आँख मलते मलते ही बदल गया सब गाँव है,
रूप-नदी-तट तू क्या अपना मुखड़ा मल मल धो रही
है न दूसरी बार नहाना संभव बहती धार में !

कोई मोती गूँथ सुहागिन ! तू अपने गलहार में
मगर बिदेसी रूप न बँधनेवाला है सिंगार में !

जब तक डूबे सूर्य सबेरा ब्याहा जाये शाम से,
तब तक गौरी माथे बिंदिया जड़ले तू आराम से,
मुँदते ही पलकें सूरज की उठते ही दिन की सभा
सबको फुरसत यहाँ मिलेगी अपने अपने काम से,
बहक उठा है चाँद और वह महक उठी है चाँदनी
देख प्यार की रितु न बीत जाये इस भरी बहार में !

कोई मोती गूँथ सुहागिन ! तू अपने गलहार में
मगर बिदेसी रूप न बँधनेवाला है सिंगार में !

विदा-क्षण आ पहुँचा

७

जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की
तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा !

फूटे भी तो थे बोल न श्वास कुमारी के
गीतोंवाला इकतारा गिरकर टूट गया,
हो भी न सका था परिचय दृग का दर्पन से
काजल आँसू बनकर छलका औ' छूट गया,

तन भींगा, मन भींगा, कण कण, तृण तृण भींगा,
देहरी-द्वारा, आँगन-उपवन त्रिभुवन भींगा,
जब तक मैं दीप जलाऊँ कुटिया के द्वारे
तब तक बरसात मचाता सावन आ पहुँचा !

जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की
तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा !

रह गये धरे के धरे ताख़ में ज्ञान-ग्रन्थ,
छुट गई बँधी की बँधी रतनवाली गठरी,
लुट गई सजी की सजी रूप की हाट और
देखती खड़ी की खड़ी रही सिगरी नगरी,

कुछ ऐसी लूट मची जीवन चौराहे पर,
ख़ुद को ही ख़ुद लूटने लगा हर सौदागर,
औ' जब तक कोई आये हमको समझाये
तब तक भुगताने ब्याज महाजन आ पहुँचा !

जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की
तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा !

आँसू ने दी आवाज़ तनिक रुक निर्मोही,
सिन्दूर तड़प बोला अब कहाँ मिलन होगा,
अलकों ने कहा ज़रा यह लट तो सहला जा
क्या ठीक कि सपनों का गौना किस दिन होगा !

सिंगार सिसकता रहा, बिलखता रहा हिया,
दुहराता रहा गगन से चातक 'पिया पिया',
पर जब तक कोई टेर कहीं पहुँचे तब तक
हर कोलाहल का हल सूनापन आ पहुँचा !

जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की
तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा !

बाहों ने बाहों को बढ़कर छूना चाहा,
अधरों ने अधरों से मिलने को शोर किया,
आँखें आँखों में खो जाने को मचल पड़ीं
प्राणों ने प्राणों के हित तन झकझोर दिया,

सबने खींचातानी की, आनाकानी की,
अपनी अपनी कमजोरी की अगवानी की,
पर जब तक पहुँचे प्यास तृप्ति के दरवाज़े
तब तक प्याले का अमृत गरल बन आ पहुँचा !

जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की
तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा !

कल सुबह एक मनिहारिन मेले में बैठी
थी बेच रही चूड़ियाँ हज़ारों चालों की,
इकरंगी-दोरंगी, भाँवर की, गौने की
ब्याही अनब्याही सभी कलाईवालों की,

कौतूहलवश मैंने भी चाहा, मैं अपनी
घरनी के लिये ले चलूँ चूड़ी सितवर्णी,
पर जब तक मैं कुछ मोल करूँ उससे तब तक
ख़ुद मुझे खोजता कोई कंगन आ पहुँचा !

जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की
तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा !

बसन्त की रात

आज बसन्त की रात,
गमन की बात न करना!

धूल बिछाए फूल-बिछौना,
बगिया पहने चाँदी-सोना,
कलियाँ फेंके जादू-टोना,
महक उठे सब पात,
हवन की बात न करना!
आज बसन्त की रात,
गमन की बात न करना!

बौराई अंबवा की डाली,
गदराई गेंहू की बाली,
सरसों खड़ी बजाये ताली,
झूम रहे जल-जात,
शयन की बात न करना !
आज बसन्त की रात,
गमन की बात न करना !

खिड़की खोल चन्द्रमा झाँके,
चुनरी खींच सितारे टाँके,
मना करूँ तो शोर मचाके,
कोयलिया अनखात,
गहन की बात न करना !
आज बसन्त की रात,
गमन की बात न करना !

निंदिया बैरिन सुधि बिसराई,
सेज निगोड़ी करे ढिठाई,
ताना मारे सौत जुन्हाई,
रह रह प्राण पिरात,
चुभन की बात न करना !
आज बसन्त की रात,
गमन की बात न करना !

यह पीली चूनर, यह चादर,
यह सुन्दर छवि, यह रस-गागर,
जनम-मरण की यह रज-काँवर,
सब भू की सौगात,
गगन की बात न करना !

आज बसन्त की रात,
गमन की बात न करना !

६

जग रूठे तो बात न कोई
तूम रूठे तो प्यार न होगा !

मणियों में तुम ही तो कौस्तुभ
तारों में तुम ही तो चन्दा,
नदियों में तुम ही तो गंगा
ग़ंधों में तुम ही निशिगंधा,

दीपक में जैसे लौ-बाती
तुम प्राणों के संग-सँगाती,
तन बिछुड़े तो बात न कोई
तुम बिछुड़े सिंगार न होगा!

जग रूठे तो बात न कोई
तुम रूठे तो प्यार न होगा!

व्योम नहीं यह, भाल तुम्हारा
धरा नहीं, है धूल चरण की,
सृष्टि नहीं यह, लीला केवल—
सृजन-प्रलय की, प्रलय-सृजन की,

तन का, मन का, जग-जीवन का,
तुमसे ही नाता इन-उन का
हम न रहें तो बात न कोई,
तुम न रहे संसार न होगा!

जग रूठे तो बात न कोई
तुम रूठे तो प्यार न होगा!

पूनम गौर कपोल बिराजे,
अधर हँसे ऊषा अरुणीली,
कुन्तल-लट से लिपटी संध्या,
श्यामा अंजन-रेख नशीली,

सरि-सागर, दिशि दिशि भू-अम्बर
तुमसे ही द्युतिमान चराचर,
रवि न उगे तो बात न कोई
तुम न उगे उजियार न होगा!

जग रूठे तो बात न कोई
तुम रूठे तो प्यार न होगा !

तुम बोले संगीत जी गया,
तुम चुप हुए, हुई चुप वाणी,
तुम विहँसे मधुमास हँस उठा,
तुम रोये रो उठा हिमानी,

जन्म विरह-दिन, मरण मिलन-क्षण,
तुम ही दोनों पर्व चिरन्तन,
दृग न दिखें तो बात न कोई
तुम न दिखे दरबार न होगा !

जग रूठे तो बात न कोई
तुम रूठे तो प्यार न होगा !

तुमसे लागी प्रीति, बिना—
भाँवर दुलहिन हो गई सुहागिन,
तुमसे हुआ बिछोह मृत्तिका—
की वन्दिन हो गई अनादिन,

निपट-बिचारी, निपट-दुखारी,
बिना तुम्हारे राजकुमारी,
मुक्ति न मिले न कोई चिन्ता,
तुम न मिले भव पार न होगा !

जग रूठे तो बात न कोई
तुम रूठे तो प्यार न होगा !

दूर नहीं हो

१०
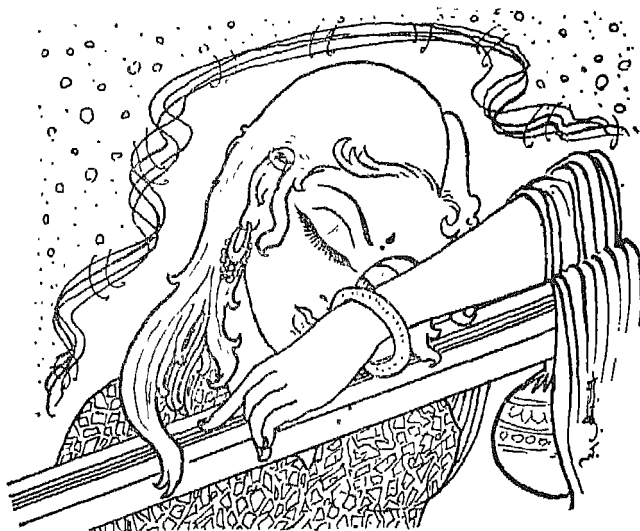
तन से तो सब भाँति बिलग तुम
लेकिन मन से दूर नहीं हो !

हाथ न परसे चरण सलौने,
पाँव न जानी गैल तुम्हारी,
दृगन न देखी बाँकी चितवन,
अधर न चूमी लट कजरारी,

चिकने-खुदरे, गोरे-काले,
छलकन औ' बेछलकन वाले,
घट को तो तुम निपट निगुन पर,
पनिहारिन से दूर नहीं हो !

तन से तो सब भाँति बिलग तुम
लेकिन मन से दूर नहीं हो !

जुड़े न पंडित, सजी न वेदी,
वचन न हुए, न मन्त्र उचारे,
जनम जनम को किन्तु वधू यह
हाथ बिकी बेमोल तुम्हारे,

झूठे-सच्चे, कच्चे-पक्के,
रिश्ते जितने दुनियाँ भर के,
सबसे तो तुम मुक्त, प्रेम—
के वृन्दाबन से दूर नहीं हो !

तन से तो सब भाँति बिलग तुम
लेकिन मन से दूर नहीं हो !

रचते रचते चित्र उड़े रँग,
शब्द थके लिख लिख परिभाषा,
गढ़ गढ़ मूरत माटी हारी,
ख़त्म न लेकिन खेल तमाशा,

कब तक और छिपोगे बोले,
अब तो मन्दिर के पट खोले,
भले भजन से दूर मगर तुम
हठी रुदन से दूर नहीं हो !

तन से तो सब भाँति बिलग तुम
लेकिन मन से दूर नहीं हो !

पाती तक न पठाई
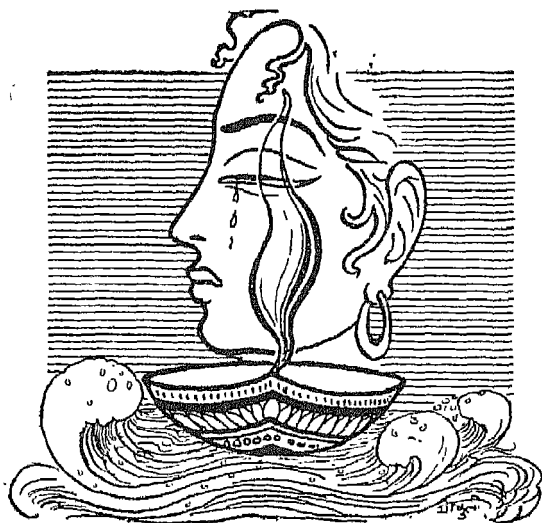
११

ऐसी सुधि बिसराई
कि पाती तक न पठाई !

बरखा गई मिलन-ऋतु बीती,
घोर घटा घहरी मन-चीती,
पर गागर रीती की रीती,

अधरों बूंद न आई
प्यास से प्यास बुझाई !

ऐसी सुधि बिसराई
कि पाती तक न पठाई !

रोज़ उड़ाये काग सबेरे,
रोज़ पुराये चौक-घनेरे,
कभी अँधेरे, कभी उजेरे,

पथ-पथ धूल रमाई,
हुई सब लोक हँसाई !

ऐसी सुधि बिसराई
कि पाती तक न पठाई !

बहकी बगियाँ, महकी कलियाँ,
गूँजे आँगन, झूमी गलियाँ,
खुलीं न मेरी किन्तु किवरियाँ,

साँकल कौन लगाई
कि खोलत उमर सिराई !

ऐसी सुधि बिसराई
कि पाती तक न पठाई !

मन की कुटिया सूनी सूनी
देह बनी चन्दन की धूनी,
बहुत हुई प्रिय ! आँख-मिचौनी,

अब तो हो सुनवाई,
सुबह संध्या बन आई !

ऐसी सुधि बिसराई
कि पाती तक न पठाई !
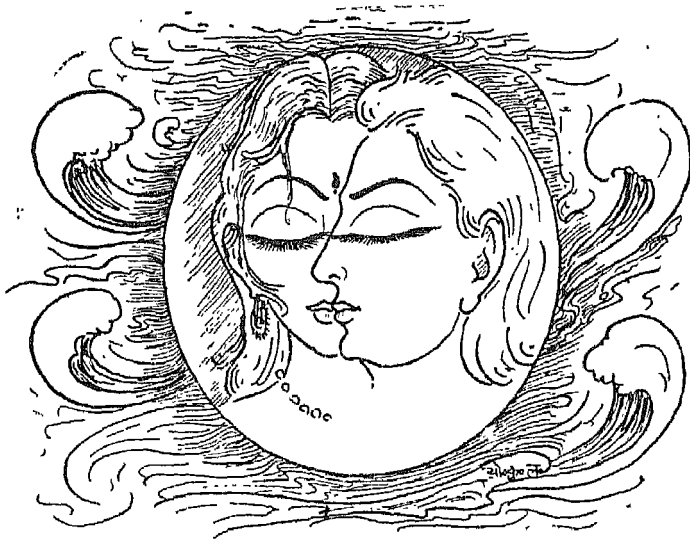
१२

धनियों के तो धन हैं लाखों
मुझ निर्धन के धन बस तुम हो !

कोई पहने मणिक-माला,
कोई लाल जड़ावे,
कोई रचे महावर मेंहदी
मुतियन माँग भरावे,

सोने वाले, चांदी वाले
पानी वाले, पत्थर वाले
तन के तो लाखों सिंगार हैं
मन के आभूषण बस तुम हो !

धनियों···!

कोई जावे पुरी द्वारिका,
कोई ध्यावे काशी,
कोई तपे त्रिवेणी-संगम
कोई मथुरा-वासी,

उत्तर दक्खिन, पूरब पच्छिम,
भीतर-बाहर, सब जग-जाहर
सन्तों के सौ सौ तीरथ हैं
मेरे वृन्दावन बस तुम हो !
धनियों…!

कोई करे गुमान रूप पर,
कोई बल पर झूमें,
कोई मारे डींग ज्ञान की,
कोई धन पर घूमे,

काया-माया, जोरू-जाता,
जस-अपजस, सुख-दुख त्रिय तापा
जीता-मरता जग सौ विधि से
मेरे जन्म-मरण बस तुम हो !
धनियों…!

१३

स्वप्न झरे फूल से,
मीत चुभे शूल से,
लुट गये सिंगार सभी बाग़ के बबूल से,
और हम खड़े खड़े बहार देखते रहे,
कारवाँ गुज़र गया, ग़ुबार देखते रहे !

नींद भी खुली न थी कि हाय धूप ढल गई,
पाँव जब तलक उठें कि राह रथ निगल गई,
पात-पात झर गये कि शाख़ शाख़ जल गई,
फाँस तो निकल सकी न, पर उमर निकल गई,
गीत अश्रु बन चले,
छन्द हो हवन चले,
साथ के सभी दिये धुआँ पहन-पहन चले,
और हम झुके झुके,
मोड़ पर रुके रुके,
उम्र के चढ़ाव का उतार देखते रहे,
कारवाँ गुज़र गया, ग़ुबार देखते रहे !

क्या शबाब था कि फूल फूल प्यार कर उठा,
क्या सुरूप था कि देख आइना सिहर उठा,
इस तरफ़ जमीन और आसमाँ उधर उठा,
थामकर जिगर उठा कि जो मिला नज़र उठा,
एक दिन मगर छली—
वह हवा यहाँ चली,
लुट गई कली कली कि घुट गई गली गली,
और हम दबी नज़र,
देह की दुकान पर,
साँस की शराब का ख़ुमार देखते रहे,
कारवाँ गुज़र गया, ग़ुबार देखते रहे !

आँख थी मिली मुझे कि अश्रु अश्रु बीन लूँ,
होठ थे खुले कि चूम हर नज़र हसीन लूँ,
दर्द था दिया गया कि प्यार से यक़ीन लूँ,
और गीत यूँ कि रात से चिराग़ छीन लूँ,
हो सका न कुछ मगर,
शाम बन गई सहर,
वह उठी लहर कि ढह गये क़िले बिखर बिखर,
और हम लुटे लुटे,
वक्त से पिटे पिटे,
दाम गाँठ के गँवा, बज़ार देखते रहे,
कारवाँ गुज़र गया, गुबार देखते रहे !

माँग भर चली कि एक जब नई नई किरन,
ढोलकें धुनुक उठीं, ठुमुक उठे चरण चरण,
शोर मच गया कि लो चली दुल्हन, चली दुल्हन,
गाँव सब उमड़ पड़ा, बहक उठे नयन नयन,
पर तभी ज़हर भरी,
गाज एक वह गिरी,
पुछ गया सिंदूर तार तार हुए चूनरी
और हम अजान से,
दूर के मकान से,
पालकी लिए हुए कहार देखते रहे,
कारवाँ गुज़र गया, गुबार देखते रहे !

एक रोज एक गेह चाँद जब नया उगा,
नौबतें बजीं, हुई छटी, डठौन, रतजगा,
कुंडली बनी कि जब मुहूर्त पुन्यमय लगा,
इसलिए कि दे सके न मृत्यु जन्म को दगा,
एक दिन न पर हुआ,
उड़ गया पला सुआ,

कुछ न कर सके शकुन, न काम आ सकी दुआ,
और हम डरे डरे,
नीर नैन में भरे,
ओढ़कर कफ़न पड़े मज़ार देखते रहे,
चाह थी न, किन्तु बार बार देखते रहे,
कारवाँ गुज़र गया, ग़ुबार देखते रहे !

हम सब खिलौने हैं

१४

हम सब खिलौने हैं !

ढीठ काल-बालक के हाथों में
फूलों के बेहिसाब दौने हैं !
हम सब खिलौने हैं !!

जन्मों के निर्दयी कुम्हार ने
साँसों के चाकों पर हमको चढ़ाया है,
तरह तरह माटी ने रूंदा है जब
तब यह अनूप रूप हमको मिल पाया है,
सबको हम मनहर हैं,
ऊपर से बहुत बहुत सुन्दर हैं,
लेकिन हम भीतर से रिक्त और बौने हैं !
हम सब खिलौने हैं !!

हमसे हर मेले की शान है,
हमसे नुमायश हर लगती है,
हमसे हर आंगन बहलता है,
हमसे दुनियाँ की हर एक दुकान सजती है,
लेकिन इतने पर भी,
ये सब गुण रखकर भी,
हम मरण-ग्राहक के वास्ते बिछाये निज
बिछौने हैं !
हम सब खिलौने हैं !!

स्वत्व है हमारा बस इतना ही
कोई भी हमसे आ खेले,
औ' खेल खेल में ही हमें तोड़ दे,
गेह-गाँव-नगर वही अपना है
वक़्त का खिलाड़ी हमें जाके जहाँ छोड़ दे,
यद्यपि हम धूलि हैं, बिकते हैं,
नाशवान होने से घिसते हैं,
चुकते हैं
लेकिन हम हैं तो सब खेल यहाँ बार बार
होने हैं !
क्योंकि हम खिलौने हैं !!

ओ प्यासे !

१५

हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे !
प्याला बदले तो मधु ही विष बन जाता है !

हैं तरह तरह के फूल धूल की बगिया में
लेकिन सब ही आते पूजा के काम नहीं,
कुछ में शोख़ी है, कुछ में केवल रूप रंग,
कुछ हँसते सुबह मगर मुस्काते शाम नहीं,

दुनियाँ है एक नुमायश सीरत-सूरत की,
होती है क़ीमत मगर नहीं हर मूरत की,
हर सुन्दर शीशे को मत अश्रु दिखा अपने
सौन्दर्य न अपनाता, केवल शरमाता है।

हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे !
प्याला बदले तो मधु ही विष बन जाता है !

पपिहे पर वज्र गिरे, फिर भी उसने अपनी
पीड़ा को किसी दूसरे जल से नहीं कहा,
लग गया चाँद को दाग़, मगर अब तक निशि का
आँगन तज कर वह और न जाकर कहीं रहा,

हर एक यहाँ है अडिग-अचल अपने प्रण पर
फिर तू ही क्यों भटका फिरता है इधर-उधर,
मत बदल बदल कर राह सफ़र तय कर अपना
हर पथ मंज़िल की दूरी नहीं घटाता है।

हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे !
प्याला बदले तो मधु ही विष बन जाता है !

दीपक ने जलन दिखा डाली सबको अपनी
इस कारण अब तक उसका जलना बन्द नहीं,
है भटक रहा भँवरा बन बन बस इसीलिये
है एक फूल का चुम्बन उसे पसन्द नहीं,

है प्यार स्वतंत्र, मगर है कहीं नियन्त्रण भी
ज्यों छन्द कहीं है मुक्ति, कहीं है बन्धन भी,
हर देहरी पर मत अपनी भक्ति चढ़ा पागल !
हर मन्दिर का भगवान न पूजा जाता है।

हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे !
प्याला बदले तो मधु ही बिष बन जाता है !

जलते जलते फट गया हिया धरती का पर
सावन जब आया अपनी मर्ज़ी से आया,
बादल जब बरसा अपनी मर्ज़ी से बरसा,
नभ ने जब गाया अपनी मर्ज़ी से गाया,

इच्छा का ही चल रहा रहँट हर पनघट पर,
पर सबकी प्यास नहीं बुझती है इस तट पर,
तू क्यों आवाज़ लगाता है हर गगरी को?
आनेवाला तो बिना बुलाये आता है।

हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे!
प्याला बदले तो मधु ही विष बन जाता है!

मैं आज सुबह बाज़ार गया तो बीच सड़क
कुछ कपड़े बेच रहा था कोई सौदागर,
मनमोहक बरन बरन का जिनका सूत देख,
मेरा भी रीझ गया मन एक दुलाई पर,

ओढ़ा पर उसको तो सब करने लगे व्यंग,
पर गाहक एक तभी बोला यह देख ढंग—
मन भले विवाह करे हर एक वस्त्र से पर
हर वस्त्र नहीं हर तन पर शोभा पाता है।

हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे!
प्याला बदले तो मधु ही विष बन जाता है!

१६

दीप नहीं, स्नेह सदा जलता है।

मिट्टी के शीश साज़
सौरभ - आलोक - क्षत्र,
गूँथ हृदय-हार मध्य
किरन-कुसुम-ज्योति-पत्र
वृक्ष नहीं, बीज अरे फलता है।
दीप नहीं, स्नेह सदा जलता है।

जन्म-मरण दो डग धर
नाप सकल भुवन-लोक,
पथ का पाथेय लिये
नयन-द्वय हर्ष-शोक,
रूप नहीं, रे अरूप चलता है।
दीप नहीं, स्नेह सदा जलता है।

रेखा की वन्दिनि, गुण-
वर्णों की भ्रमासक्ति
छवि की छाया-नटनी
दृग की जड़ धूल-भक्ति,
आकृति तो कृति की असफलता है।
दीप नहीं, स्नेह सदा जलता है।

बुलबुल और गुलाब

१७

मत छेड़ !
मत छेड़ !
बुलबुल ! सोते गुलाब को मत छेड़ !

धूप से,
गर्मी से,
काँटों से,
हवा के गरम गरम तेज़ सर्राटों से
दिन भर यह लड़ा है,
झगड़ा है,

और अभी थक कर,
बहुत थक कर,
शायद ग़श खाकर गिर पड़ा है।
थकन इसे कुछ तो मिटाने दे,
तुझको आलिंगन में जड़ सके,
और तेरे होठों पर चुम्बन का ताजमहल गढ़ सके,
इसकी भुजाओं में इतनी तो शक्ति आ जाने दे !
मत छेड़ !
मत छेड़ !
बुलबुल ! सोते गुलाब को मत छेड़ !

मत छेड़ !
मत छेड़ !
बुलबुल ! सोते गुलाब को मत छेड़ !
तेरी शरारत से सोये हुए घावों को ठेस लग सकती है,
नरम नरम पातों में,
ठंडी ठंडी डालों में आग दहक सकती है,
आवारा चाँद की
हरजाई नींद की आँख बहक सकती है,
क्योंकि प्यार सोये तो शीशा है,
जागे तो जादू है,
दर्द जब तक भीतर है वश में है,
बाहर बेक़ाबू है।
ठंडे अंगारों का गाँव है यह
व्यर्थ चिनगारी न यहाँ डाल,
हवा जो पत्तों के तकियों पर
सोने की कोशिश में करवट बदल रही है,
खुशबू जो पँखुरी की खिड़की से
दबे पाँव चोर जैसी चुप चुप निकल रही है,

उन सबमें उठा न असमय भूचाल !
मत छेड़ !
मत छेड़ !
बुलबुल ! सोते गुलाब को मत छेड़ !

बुलबुल ! यह वह देश नहीं
जहाँ प्यार बेरोक किया जा सके,
मन भाये फूल को
आत्मा का अर्घ्य बेख़ौफ़ दिया जा सके ।
मिट्टी के अश्रु भरे नाटक में
सुख यहाँ केवल विष्कंभक है,
और आनन्द—
अरे वह तो मेहमान है,
भूले-भटके ही कभी आता है,
शाम आये तो सुबह वापिस चला जाता है,
वह केवल रोग है,
शौक है जो पास रह पाता है ।
और यहाँ प्यार—
अरे प्यार नहीं, सौदा है
उसकी दूकानें हैं
हाटें-बाज़ारें हैं
जिनमें वह कपड़ों के भाव मोल बिकता है,
चाँदी और सोने की उसकी तराज़ू में
आदमी से लेकर के ईश्वर तक तुलता है ।
और यहाँ दिल दिल के बीच दीवारें हैं,
जाति-पाँति,
धर्म-कर्म,
रंग-वर्ण,
देश-काल वाली बड़ी ऊँची मीनारें हैं ।

उनको गिराना आसान कोई काम नहीं
वहाँ लगे बड़े बड़े पहरे हैं
क्योंकि मठ-मस्जिद औ' गिरजाघर
पंडित औ' पादरी
शेख़ और मौलवी
मज़हब के जितने भी ठेके-ठेकेदार हैं,
सबके सब इन्हीं के सहारे तो ठहरे हैं।
इन्हें लाँघ जाने की सज़ा मौत पाना है
ईसा की भाँति क्रास ऊपर चढ़ जाना है,
गाँधी की तरह गोली खाकर मर जाना है।
मरण क्या तुझको स्वीकार है ?
अर्थी उठाने को अपनी तैयार है ?
नहीं ! नहीं !
तो मत छेड़ ! मत छेड़ !
बुलबुल ! सोते गुलाब को मत छेड़ !

मत छेड़ !
मत छेड़ !
बुलबुल ! सोते गुलाब को मत छेड़ !
दुखी क्यों होती उदास क्यों होती है ?
प्यार गर प्यार है तो उसका हर आँसू एक मोती है,
मोती वह—
माँग जिसे भर कर
जवान यह बूढ़ी सृष्टि होती है।
तूने जो मोती ढुलकाया
वह व्यर्थ नहीं जायेगा,
प्यार का मौसम इसी बगिया में आयेगा,
आयेगा नहीं तो वह—
आने को विवश किया जायेगा।

आज मगर दूसरी ही बात है,
कहने को बहुत कुछ तबियत है,
लेकिन वह देख कैसी काली काली रात है।
कल की जो बात आज सुनेगी, डर जायेगी.
तेरी यह शानदार कलगी गिर जायेगी;
और फिर अँधेरे के कान भी···
बहुत सजग होते हैं
बहुत कुछ तो वे बिना कहे सुन लेते हैं,
इसीलिए चाँदनी का चुम्बन
सितारे बहुत धीरे से लेते हैं।
लेकिन तू चुम्बन···नहीं—
जा आज लौट जा
गीतों की शहजादी !
अपने ही गीतों के गाँवों को लौट जा।
तब यहाँ आना जब
किसी भी बगिया के आस-पास
कोई भी न घेरा हो,
कोई भी न मेढ़ हो,
कोई न दीवार हो,
हर पैदा हँसता हो, जगता हो,
सब पर बहार हो
और हर फूल तुझे—
प्यार करने के लिये—
बिलकुल आजाद हो—
बिलकुल तैयार हो।
आज किन्तु सोये हुए सपनों को
मत छेड़ ! मत छेड़ !
बुलबुल !
जीवन के घायल सिपाही को मत छेड़ !

अस्पृश्या

१८

एक दिन शिशिर की शीत संध्या को
घूमकर आ रहा था वापिस भवन की ओर
नगर की स्वच्छ और पक्की फुटपाथ पर,
इतनी पड़ रही थी ठंड
संसृति की चेतना हुए थी जड़ हिमराशि ।
मानव कृतघ्नता सी तीक्ष्ण प्राण-भेदिनी
हड्डियाँ कंपाती
और नस नस चटकाती हुई
चलती थी भयंकर वात ।
शीत का स्वराज्य था,
मृत्यु सी शीतल जड़ छाई थी विचित्र शान्ति

पक्षी भी न नीड़ों से बाहर तक झाँकते थे
केवल दो चार श्रमिक
कभी कभी दृष्टि आ जाते थे इधर-उधर
पेट में दबाये सर !
सहसा तीव्र वायु-वेग होने लगा,
और गगन भर गया प्रचंड काल मेघों से ।
ताण्डव आरंभ हुआ
वाणों की वर्षा सी झड़ी फिर लग गई,
चलती हुई राह वह जहाँ की तहाँ रुक गई
मानो सब हलचल हो चुक गई ।
उस पथ के पास एक मन्दिर था ।
मन्दिर—जहाँ द्वार पर धर्म का पेहरा है
ज्ञान-भक्ति नित्य जहाँ शीश झुका आते हैं,
और हम सबके भगवान जहाँ—
भक्तों से निशि-दिन प्रसाद भोग पाते हैं
लेकिन हमारे कभी काम नहीं आते हैं,
बहुत यदि सताओ तो पट बन्द करके सो जाते हैं ।
एक क्षण में ही उसी मन्दिर के आँगन में
भीड़ बड़ी जुड़ गई
और लोग करने लगे कीर्तन भगवान का ।
उसी समय—
दूर एक पेड़ के नीचे से
दुख की साकार कृष्ण छाया सी,
दैन्य दारिद्रय की अनकही कथा सी,
शोषण की प्रथा,
और वाणविद्ध हँसिनी की व्यथा सो,
फटे ग्रथित चिथड़ों में लिपटी हुए,
ज्वर के असह्य ताप भार से

काँपती-कराहती—
गिरती सँभलती हुई
अर्धनग्न युवती एक चली आ रही थी इधर।
जगह जगह कंकड़ औ' पत्थर की चोटों से
घायल था उसका तन,
और था चू रहा अजस्र रक्त
रोते हुए घावों से ।
एक था बालक नग्न—
छिपा अस्थि-अंक में
उसके मातृत्व का सजीव स्वप्न
गाँधी जवाहर या कि कोई भविष्य का ।
बालक था इतना हतसंज्ञ हुआ शीत से
कि—
रोदन का शब्द भी न मुख से निकलता था ।
देख समवेत जन-पुंज वहाँ मन्दिर में
दूने साहस से वह बढ़ने लगी क्षीणकाय—
बढ़ता है जैसे कोई खोया हुआ पथिक एक—
पास ही देख निज मंज़िल को।
चढ़कर पर ज्योंही वह सीढ़ियों के पास गई
एक तिलकधारी यूँ पुजारी ने कहा चीख—
"राँड़ भ्रष्ट करने चली अकलुष भगवान को।"
रह गई ठिठककर वह वहीं हाय,
मानो हो देखा भयंकर सर्प सामने।
किन्तु मातृ-उर की सजीव ममता-सी वह
गिड़गिड़ा कर बोली संकेत कर बालक को—
"दया करो इस पर देव।"
पर न द्रवित हो सका उसका पाषाण हृदय
होता भी कैसे भला—

आख़िर को था तो पत्थर का पुजारी वह
क्रोध कर बोला यूँ—
"भाग जा यहाँ से नहीं लात अभी खायेगी !"
इसके ही पूर्व किन्तु युवती थी गिर पड़ी
उसके जड़ चरणों पर
और धो रही थी मल उनका जल धारा से
या कि धो रही थी वह समाज का सजीव कोढ़ ।
लाल कर आँखें विकराल नर-हिंसक सा बोला वह—
"भ्रष्टे-पापिष्ठे ! भ्रष्ट कर दिया तूने मुझे ।"
और दूसरे ही क्षण
युवती थी पड़ी हुई हाय ! तले सीढ़ियों के—
एक पग ठोकर से—
मन्दिर से दूर—
उसके घर से भी दूर—
जहाँ रहा करता है अशरण-शरण दाता वह !
लेकिन फिर शिशु को—
निश्चेष्ट और मौन देख
किसी आशंका का चिन्तन कर
सिहर उठी,
काँप उठी,
जी उठी,
मर उठी,
तिर उठी नील नयन-सागर में
और निज प्राण का भी ध्यान छोड़ बोली यूँ—
"पूज्य जहाँ बैठे हैं कितने ही श्वान वह—
मेरे प्रवेश से अपावन हो जायेगा ?
ज़रा तो दया करो इस अबोध शिशु पर ।"
किन्तु वह पुजारी फुंकार कर गरजा यूँ—

"अपने यारों की सम्पत्ति लिए गोद में
फिरती है भ्रष्ट ! दया-दया चिल्लाती हुई
अपने सतीत्व को टके सेर
गली-गली विक्रय करने वाली !
कुत्तों से ज़्यादा अपवित्र है तेरी छाँह।"
अब न सुन सकी वह और
रह-रह कानों में उसके ये गूँजते थे शब्द—
"अपने सतीत्व को टके सेर
गली गली विक्रय करने वाली !
कुत्तों से ज़्यादा अपवित्र है तेरी छाँह।"

दूसरे रोज़ !
उसी पेड़ की छाँह में पड़ी थी वह क्षणिकाय
मरी हुई
और स्तनों से वह लिपटा था शिशु ऐसे—
जैसे मन माया से—
किन्तु चेतना विहीन !

जहाँ नहीं मानव मानव समान
कैसा वह तेरा दरबार है ?
व्यर्थ ही चमक रहा फैले घने तम में
व्यर्थ ही रूप धरे धूर्त भगवान का
खंड खंड होजा ओ मन्दिर के स्वर्ण-कलश !
खंड खंड होजा ओ पाषाण-प्रतिमे आज !

५-६-१९४६

सिक्का
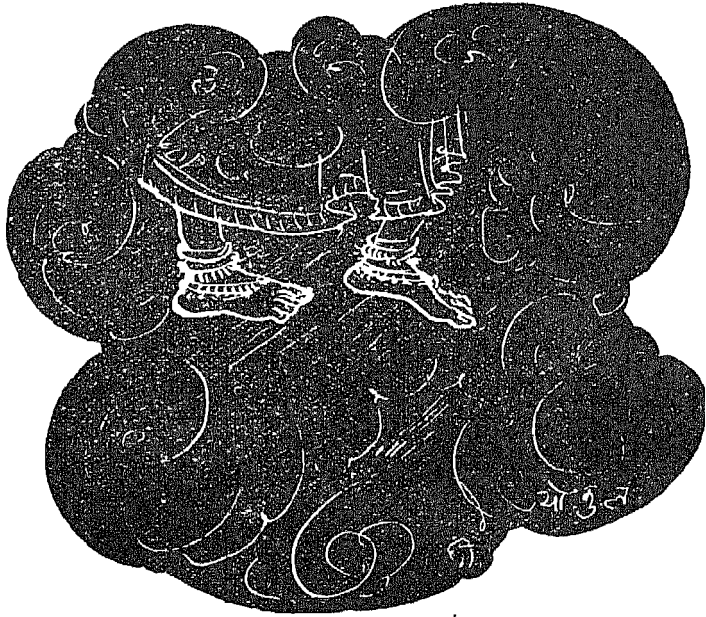
१६

मैं चंचल पंथी चाँदी के पथ का !

जननी मेरी पूँजी—वासवदत्ता,
व्यभिचारी शोषण मेरा रसिक पिता,
मैं रोटी का पति, बिन जिसके जग में
टुकड़ों पर बिकने लगती मानवता,
जन्मा मैं जिस दिन चोर-बजारों में
था जुआ हुआ साहित्य-संस्कृति का ।

मैं चंचल पंथी चाँदी के पथ का !

मैं रक्त, स्वेद, श्रम पी-पीकर पलता,
पग जग के मस्तक पर धर मैं चलता,
सोता नारी के नग्न उरोजों पर
जगता सतीत्व मैं चुटकी से मलता,
युग की द्रौपदी नग्न कर दी मैंने
मैं अर्थ दुशासन के कामी कृत का।

मैं चंचल पंथी चाँदी के पथ का !

मैंने राजा को रंक बना डाला,
मैंने फ़क़ीर को ताज पिन्हा डाला,
रवि उगा दिया पूरब का पश्चिम में
शिर पर धरती आकाश उठा डाला,
बाँटा मानव को आनों-पैसों में
मैं वाहक युग की पूँजी के रथ का।

मैं चंचल पंथी चाँदी के पथ का !

मुझको जिसने पाया सब कुछ पाया,
त्यागा जिसने सब कुछ निज बिनसाया,
बदलीं मैंने रेखायें मस्तक की
विधि का विधि बनकर मैं जग में आया,
मैं जन्म-मरण से परे ब्रह्म जिसके
कर में गति-सूत्र सृष्टि के इति-अथ का।

मैं चंचल पंथी चाँदी के पथ का !

दुनियाँ प्यासी मेरे आलिंगन की,
ठोकर भी कली खिला देती मन की,
सह लेता मेरी मार तनिक भी जो
नस ही उसकी झुक जाती गर्दन की,
कैसा भी हो जड़-बुद्धि मुझे पाकर
पा लेता है सब ज्ञान असत-सत का।

मैं चंचल पंथी चाँदी के पथ का !

४-५-४६
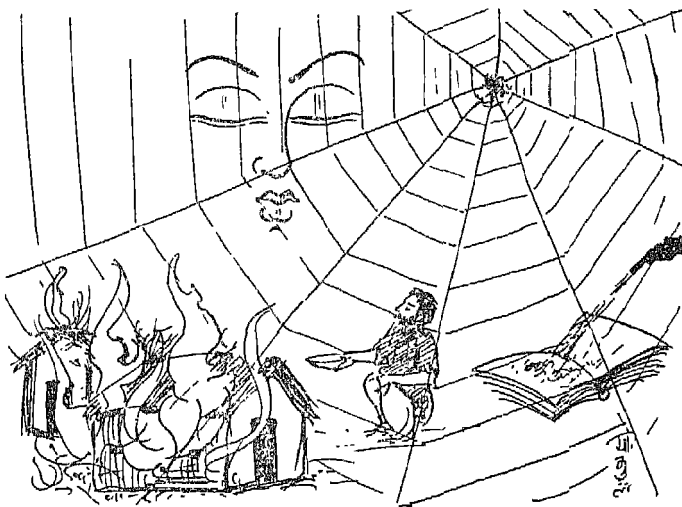
२०

हम सब अमरीकन खिलौने हैं !

वैसे हम देखने में आदमी हैं,
शक्ल भी हमारी बहुत सुन्दर है,
खंजन से लोचन हैं,
पूनों सा श्वेत गौर वर्ण है,
लेकिन हम भीतर से गन्दे और घिनौने हैं।

हम सब अमरीकन खिलौने हैं !

हम व्यक्तिवादी नहीं,
एक है हमारी भी पंक्ति यहाँ
और उस पंक्ति में
योद्धा हैं, सन्त हैं,
कवि हैं, गुणवन्त हैं,

बड़े बड़े नाम के महन्त हैं।
लेकिन बेकार है हमारा यह गौरव सब
क्योंकि हम बिकते हैं,
हाट हो, मेला हो,
घर हो, बाज़ार हो,
पर्व हो, नुमायश हो
हमें जहाँ दाम निज पाने की आशा है
वहीं हम——
बाँसों-अरगनियों पर,
सड़कों-दूकानों पर——
सजे हुए दिखते हैं।
छोटा-बड़ा जो भी हो
सबसे ही मोल-भाव करते हैं।
हम सब खिलौने हैं,
दूसरों के हाथों में लालच के दौने हैं।
हम सब अमरीकन खिलौने हैं!

गति से हमें नफ़रत है,
भाग-दौड़ करना हमारी नहीं फ़ितरत है।
जीवित हैं किन्तु हम चलते नहीं,
आकृति रखकर भी किसी साँचे में ढलते नहीं,
सुबहों को बुझते नहीं,
रातों को जलते नहीं,
क्योंकि हम स्थिति में स्थित हैं,
न हम विवादी हैं,
न हम संवादी हैं,
सिर्फ़ खड़े रहने के आदी हैं।
भार हम कोई उठा सकते नहीं

इसलिए किसी के कुछ काम आ सकते नहीं।
वृद्ध युवक सब को हम व्यर्थ हैं,
नहीं किसी अर्थ हैं।
लेकिन कुछ बच्चे हैं,
नासमझ उम्र के जो कच्चे हैं,
उनकी नज़रों में हम चाँदी और सोने हैं,
जादू और टौने हैं
क्योंकि हम अमरीकन खिलौने हैं!

चूँकि हम प्रगति से अपरिचित हैं
इसलिये हमारी कोई दृष्टि नहीं,
दिशा नहीं, ध्येय नहीं, मंज़िल नहीं।
हवा जिधर ले जाये उधर उड़ जाते हैं,
सब जगह मेला लगाते हैं,
गाहक की मर्ज़ी पर शक्ल बदल आते हैं।
इतने दिन इसी तरह हमने बिताये हैं,
चाबी से चले किन्तु पैसे कमाये हैं।
लेकिन अब लगता हमारा खेल ख़त्म है,
दुनियाँ में हलचल है,
और हवा गर्म है।
रोक सकते हैं नहीं
हम इस परिवर्तन को
टोक सकते हैं नहीं
हम इस नव सर्जन को
क्योंकि सब जागे हैं
नींद के परिन्दे दूर भागे हैं;
लेकिन हम अब भी नक़ाब कई पहने हैं।
क्योंकि हम आख़िर खिलौने हैं!

पर यह नक़ाब अब उतरने ही वाला है,
पन्नी का स्वाँग सब उधरने ही वाला है,
क्योंकि एक रत्ती भी हममें न बल है
हाथ-पाँव ही न सिर्फ़
सीना भी निबल है,
और उधर हर एक कर में
कुदाली है, हल है।
इसीलिए हम सब ख़ामोश हैं,
घर की अँधेरी कोठरियों में
ताख़ों अलमारियों में—
ग़म से बेहोश हैं
लेकिन हम शेष हैं,
और शेष रहेंगे कि जब तक—
हर घर में कुछ कन्नस, कुछ कोने हैं।
हम सब अमरीकन खिलौने हैं!

२१

मिल गया जनम का तो उपहार मरण से भी
पर तेरे घर मेरी सुनवाई हुई नहीं !

उस दिन मेले में ढीठ उमर की गुड़िया यह
जाने तुझमें क्या बात देखकर मचल गई,
है खड़ी हुई तब से अब तक यह उसी जगह
जब बस्ती की बस्ती गठरी ले निकल गई,

बदला जग, बदला जीवन, बदले सिंहासन,
बदले आकाश-धरा, बदले फागुन-सावन
पर जाने तू किस कंगन में कस गया मुझे
अब तक मेरी आज़ाद कलाई हुई नहीं।

मिल गया जनम का तो उपहार मरण से भी
पर तेरे घर मेरी सुनवाई हुई नहीं !!

धरती तो थी जड़ धूल मगर उसके दुख से
ऐसा रोया आकाश कि दुनियाँ नहा गई,
अपने दुश्मन पतझार के ग़म से घायल हो
बिखरा बसन्त यूँ दिशा दिशा महमहा गई,

जीवन है महाकाव्य : दुख जिसका आमुख है,
फिर भी हर दुख का मीत यहाँ कोई सुख है,
बस मैं ही एक कि जिसके जलते आँगन की
हमदर्द यहाँ कोई पुरवाई हुई नहीं।

मिल गया जनम का तो उपहार मरण से भी
पर तेरे घर मेरी सुनवाई हुई नहीं !!

दुहराया तेरा नाम कभी सागर तीरे
बादल बन कभी पुकारा रेगिस्तानों में,
बन खेल-खिलौना खोजा भीड़-तमाशे में
आवाज़ लगाई पहन कफ़न शमशानों में,

खो गया मुसाफ़िर स्वयं नापते हुए डगर,
थक गये साँस के पाँव, ख़त्म हो गया सफ़र
लेकिन अब तक इस पीड़ा के कारागृह से
मेरे तन-मन की तनिक रिहाई हुई नहीं।

मिल गया जनम का तो उपहार मरण से भी
पर तेरे घर मेरी सुनवाई हुई नहीं !!

जाने तू किस खिड़की से खड़ा झाँकता हो
यह सोच झुकाया शिर हर मन्दिर के द्वारे,
जाने तू कब आकर घर साँकल खटकाये
जीवन भर सोया नहीं इसी ग़म के मारे,-

हर दम ही आँखें रहीं भरीं उघरी-उघरी
तिल तिल घुल छीजी देह, हुई रीती गगरी
लेकिन ओ मेरे चाँद ! बिना तेरे जग में
मेरे जीवन की रात जुन्हाई हुई नहीं।

मिल गया जनम का तो उपहार मरण से भी
पर तेरे घर मेरी सुनवाई हुई नहीं !!

कल रो रो एक दिया कहता था संध्या से
'सारा जीवन तो बीत गया जलते-जलते
पर कोई नहीं मिला जिसके स्नेहांचल में
कुछ जलन मिटा लेता अपनी चलते चलते'।

संध्या तो कुछ कह सकी न बस रह गई खड़ी
यह कहकर पर चमकी तारों की एक लड़ी—
'रोता है क्यों रे ! धनियों की इस बस्ती में
निर्धन आँसू की कभी सगाई हुई नहीं'।

मिल गया जनम का उपहार मरण से भी
पर तेरे घर मेरी सुनवाई हुई नहीं !!

२२

तुमको तो मेरी याद न आयेगी,
आयेगी भी तो नहीं रुलायेगी,
पर कभी रुला ही दे तो यह करना—
सामने किसी दर्पन के बैठ ज़रा—

पहले मुस्काना फिर शरमा जाना।

वैसे तो प्रिय ! तुम इतनी सुन्दर हो
रोओगी भी तू फूल खिलाओगी,
बादल को अलकों में भरमाओगी,
सावन को पलकों में तरसाओगी,

तरसाना भरमाना पर ठीक नहीं,
बिजलियाँ कौंध उठती हैं कभी कहीं,
माने ही किन्तु न मन तो यह करना—
उगते चन्दा से आँखें उलझाकर—

आँचल खिसकाना, फिर अलसा जाना ।

चन्दा से आँख मिलाना बुराना नहीं
हर तारे से पर प्यार न अच्छा है,
जूड़े की शोभा एक फूल से है,
उपवन भर से अभिसार न अच्छा है,

इसलिये कि जो सबसे टकराता है,
वह नहीं किसी का भी हो पाता है,
पर फिर भी बस न चले तो यह करना—
जा किसी दुखी पतझर के दरवाज़े—

कुछ आँसू ले आना, कुछ दे आना ।

सुन्दरी ! रूप चाहे जिसका भी हो
यौवन के घर पर एक भिखारी है,
तुम चाहे जितना गर्व करो उस पर
रुकने वाली उसकी न सवारी है,

जो अपना नहीं गरब उस पर कैसा ?
जीवन तो है कागज़ के घर जैसा
फिर भी यदि मान करो तो यह करना—
कोई मुरझाया फूल मसल करके—

पहले कुछ सुख पाना, फिर पछताना ।

तुम चहल-पहल व्याहुली अटारी की,
मैं सूनापन विधवा के आँगन का,
है प्यार मिला तुमको मधुमासों का,
मुझ पर साया है रोते सावन का,

मिलना तो अब अपना नामुमकिन है
कारण—ढलने को जीवन का दिन है,
पर फिर भी मिल जायें तो यह करना—
अपने सपनों के मरघट में बैठा—

मैं सिसकूँ तो तुम कफ़न उढ़ा जाना।

२३

फूल डाली से गुँथा ही झर गया,
घूम आई गंध पर संसार में।

था गगन में चाँद लेकिन चाँदनी
व्योम से लाई उसे भू पर उतार,
बाँस की जड़ बाँसुरी को एक स्वर
कर गया गुंजित जगत के आर पार,
और मिट्टी के दिये को एक लौ
दे गई चिर ज्योति चिर अँधियार में।
घूम आई गंध पर संसार में।

बद्ध सीमा में समुन्दर था मगर
मेघ बन उसने छुआ जा आसमान,
तृप्ति वन्दी एक जल-कण में रही
विष-अमृत का दे गई पर प्यास दान,
कूल जो लिपटा हुआ था धूल से
सँग लहर के तैर आया धार में।
घूम आई गंध पर संसार में।

व्यक्ति है सीमित, मगर व्यक्तित्व का—
चिर असीमित, चिर अबाधित है प्रसार,
देवता तो सिर्फ मठ की वस्तु है,
किन्तु है देवत्व संसृति का शृंगार,
है नहीं संसार में सीमित प्रणय
किन्तु है संसार सीमित प्यार में।
फूल डाली से गुँथा ही झर गया,
घूम आई गंध पर संसार में।

तुम तब आना
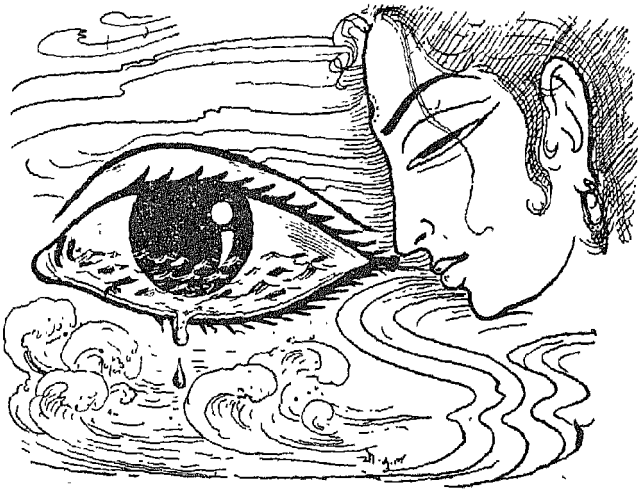
२४

प्रियतम ! तुम तब आना——

तन्द्रिल पलकों की घनी छाँह में, तुम्हारे प्रतीक्षा-पंथ पर अह-निशि, अकंपित जलते हुए, दिवा-निशा की अभिसार-बेला में, जब मेरे नयनों के नीलम प्रदीप में अश्रु-स्नेह की अंतिम बूँद, रूप-ज्योति की अंतिम किरण, धूप-गंध की अंतिम सुगन्धि-श्वास शेष रह जाये और पुतलियाँ पथराने लगें, तब सूर्य का उज्ज्वल मुकुट मस्तक पर लगाये, ऊषा का गुलाबी हास अधरों पर बिखेरे, सद्यः प्रस्फुटित प्रसून अलकों में गूँथे, काकली का कलराग कंठ में भरे, तुम एक बार, केवल एक बार, क्षण भर के लिए आकर मुझे अपनी बाँकी झाँकी दिखा जाना, जिससे कि खुलती कली की पहली शर्म से मैं तुम्हारा स्वागत कर सकूँ, शबनम के रुपहले मोतियों का हार तुम्हें पहनाकर, तुम्हारा श्रृंगार कर सकूँ, सहर की नाजुक नसीम से तुम्हें गुदगुदा सकूँ और तम के अनन्त लोक में जाने से पूर्व प्रकाश के उद्गम पुंज का साक्षात दर्शन कर सकूँ।

किन्तु हाँ मेरे देव ! इसके पूर्व यदि तुम आये तो मुझे दुख होग, असीम वेदना होगी, शर्म से मैं मर मर जाऊँगी, संभवत: अपने नेत्रों का अलोक-दीप अपने हाथों से ही बुझा दूँ; और स्वागत तो दूर तब मैं तुम्हारी ओर दृष्टिपात भी न कर सकूँगी, इसलिए नहीं कि तब मेरी साधना अधूरी ही रह जायगी, इसलिए भी नहीं कि तब मैं स्वयं को तुम्हारे चरणों पर सम्पूर्णतः समर्पित न कर सकूँगी और न इसलिए ही कि तब मुझे तुम्हारी आवश्यकता ही न होगी—हाय ! ऐसा सोचना भी न मेरे प्रभु !

तुम्हारी आवश्यकता, तुम्हारा अभाव और तुम्हारी मधुर सुस्मृति तो मैं उठते-बैठते, जागते-सोते अहर्निशि अपने रोम-रोम से अनुभव करती हूँ ! फिर क्यों ? केवल इसलिए कि जिन नेत्रों से मैं तुम्हें एक बार देख लूँगी, फिर उनसे ही संसार की और कोई वस्तु मुझसे न देखी जायेगी।

अस्तु आराध्य ! तुम तब आना जब मेरे नयनों के नीलम प्रदीप में अश्रु-स्नेह की अन्तिम बूँद, रूप-ज्योति की अन्तिम किरण, धूप-गंध की अन्तिम सुगंधि-श्वास शेष रह जाये और पुतलियाँ पथराने लगें !—तुम तब आना।
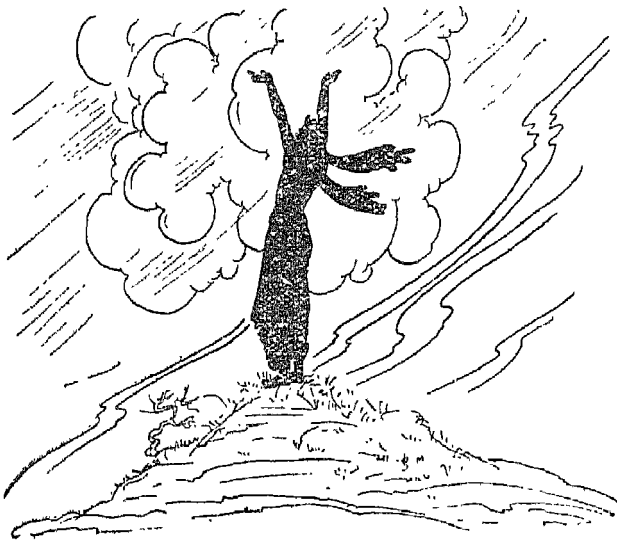
२५

मनुष्य ने जब अमर बनने की कल्पना की वह दौड़ा दौड़ा समुद्र के पास गया और बोला, "ओ तरंगवसनवेषी ! आज मैं तुम्हारा मन्थन करूँगा, तुम्हारी थाह लूँगा और तुम्हारे अन्तर से अमृत निकालकर अमरत्व प्राप्त करूँगा।" समुद्र ने एक उत्तुङ्ग तरंग उछालकर कहा, "--समुद्र मन्थन तो बहुत पहले हो चुका है और अमृत उसकी तो एक बूंद भी देवताओं ने नहीं छोड़ी--अब मेरे अन्तर में अमृत कहाँ, किन्तु हाँ यदि तू मेरी थाह लेने के लिये मेरी अगम गहराइयों में डूबना चाहता है, तो जा किसी दुखी के आँसू में डूब कर देख--तुझे मेरी थाह भी मिल जायेगी और अमरता भी।"

मनुष्य के हृदय में पूजा की भावना जब उमड़ी उसने आकाश की ओर हाथ उठाकर कहा, "हे सच्चिदानन्द, निर्गुण, निराकार ! आज मेरे हाथ किसी की आरती उतारने को आकुल हैं, लोचनों की सीपियों में अर्घ्य का जल छलका पड़ रहा है, मन में पूजा की भावना उमड़ रही है, अस्तु मैं तुम्हें साकार कर तुम्हारी पूजा करूँगा।" आकाश से कोई बोला, "सत्य है अमृत पुत्र ! तुझमें कुछ ऐसी ही शक्ति है कि तू निराकार को भी साकार कर सकता है, निर्गुण को भी सगुण कर सकता है, पत्थर को भी देवता बना सकता है, पर यह सब व्यर्थ है संसार में जा और मनुष्य को मनुष्य बनाकर उसकी पूजा कर, मैं स्वयं ही साकार हो जाऊँगा--मनुष्य की पूजा मेरी ही पूजा है।"

मनुष्य में जब अहम् जागा, वह स्वर्ग पहुँचा और सुरराज से बोला—"देवराज ! आज मेरे हृदय में शासन करने की इच्छा उठी है, पृथ्वी का राज्य तो मैं कर चुका अब स्वर्ग पर शासन करना चाहता हूँ इसलिये स्वर्ग का मुकुट मुझे दो मैं उसे अपने मस्तक पर धारण करूँगा।" इन्द्र ने किंचित मुस्कराकर कहा--"स्वर्ग तो केवल कल्पना-लोक है, लेकिन शासन करना यदि तू चाहता है--तो जा जनपद की धूल मस्तक पर धारण कर तुझे त्रिलोक का राज्य प्राप्त हो जायेगा।"
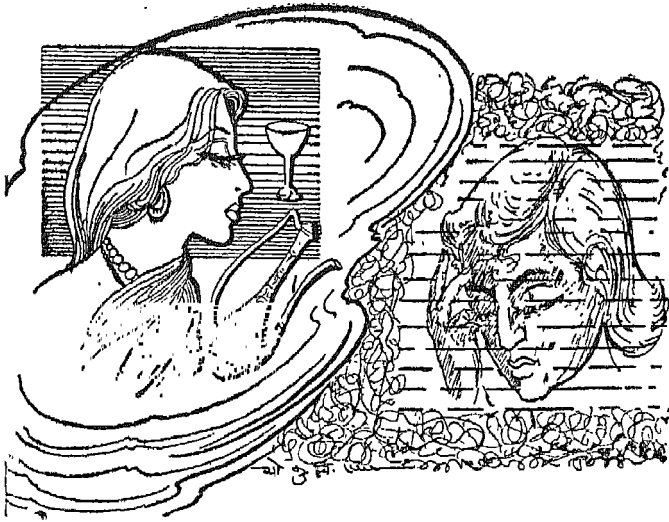
२६

हँसकर दिन काटे सुखके, हँस खेल काट फिर दुखके दिन भी।

मधु का स्वाद लिया है तो विष का भी स्वाद बताना होगा,
खेला है फूलों से तो शूलों को भी अपनाना होगा,
कलियों के रेशमी कपोलों को तूने चूमा है तो फिर
अङ्गारों को भी अधरों पर धर कर रे! मुस्काना होगा,
जीवन का पथ ही कुछ ऐसा जिस पर धूप छाँह सँग रहतीं
सुख के मधुर क्षणों के सँग ही बढ़ता है चिर दुख का क्षण भी।
हँसकर दिन काटे सुखके, हँस खेल काट फिर दुखके दिन भी।

(२)

गहन कुहू की अँधियारी में कब तारों की छवि मुरझाई?
काँटों के कटु अञ्चल में कब कलि की सुन्दरता अकुलाई?
बन्द हुई कब पपीहे की 'पी' वज्र बिजलियों के पतझड़ में,
सरिता की चल चञ्चलता कब सागर के सम्मुख शरमाई?

तू फिर क्यों खो बैठा साहस देख घिरा सिर पर दुख-बादल
और भुला बैठा क्यों तुझमें शेष अभी जीवन, यौवन भी।
हँसकर दिन काटे सुखके, हँस खेल काट फिर दुख के दिन भी।

(३)

शूलों का अस्तित्व जहाँ है फूल वहीं तो मुस्काता है,
जहाँ अँधेरे की सत्ता है, जुगनू वहीं चमक पाता है,
जीवन पूर्ण नहीं है पाकर केवल कुछ सुख के ही मृदु क्षण
सुख भी तो सुख कहलाता तब जीवन में जब दुख आता है,
इससे जो कुछ है सम्मुख वरदान समझ उसको मेरे मन !
और देख फिर खोजेगा सुख तेरे दुख की छाँह-शरण ही।
सुख के दिन सपने थे केवल सत्य मनुज ये दुख के दिन ही।

(४)

सुख के दिवस दिये थे जिसने देन उसी की ये दुख के दिन,
जिस घट से छलकी थी मदिरा, शेष उसी घट के ये विषकण
यह अचरज की बात न कोई सीधा सादा खेल प्रकृति का
मधु ऋतु से विक्रय पतझर का सदा किया करता है मधुवन
यह क्रम निश्चित इसे न कोई बदल सका है, बदल सकेगा,
इससे ही तो कहता हूँ हैं व्यर्थ अश्रु औ' व्यर्थ रुदन भी।
हँसकर दिन काटे सुखके, हँस खेल काट फिर दुखके दिन भी।

(५)

मुस्काता ही रहा सदा तो मुश्किल भी हल हो जायेगी,
रुके अश्रु सी थकी ज़िन्दगी, तूफ़ानों की गति पायेगी,
पथ की ऊँचाई, नीचाई जिसे देख कर डरता है मन
क्षण भर में तेरे पग से, रुँद रुँद कर समतल हो जायेगी,
दुख के सम्मुख मुस्काने से दुख ही सुख लगने लगता है,
बन जाता विश्वास विजय का थका पड़ा मुरदा सा मन भी।
हँसकर दिन काटे सुख के, हँस खेल काट फिर दुख के दिन भी।

(६)

हँस कर या रोकर तय कर, तय करना है तुझको ही यह मग,
तुझ पर हँसने का अवसर वह ताक रहा है छिप छिप कर जग,
लक्ष्य-प्राप्ति से पूर्व कहीं जो रुका याद रख, जग के सँग सँग
तुझ पर खूब हँसेंगे तुझको प्यार सदा करने वाले दृग,
और पंथ पर चलते चलते ही यदि पथ की धूल बना तो
तेरी खाक देख शरमायेगा युग-मस्तक का चन्दन भी
हँसकर दिन काटे सुखके, हँस खेल काट फिर दुख के दिन भी।

(७)

साँझ सूर्य की सांध्य-किरन जो तम की चादर में खो जाती,
वही प्रात ऊषा बन कर फिर तम के घूँघट से मुस्काती
तमं से दूर ज्योति जीवन की ज्योतिहीन है, तम सी ही है,
क्योंकि बुझी सी ही जलती है दिन में दीपक की मृदु बाती,
माना यह प्रकाश जीवन में भरता है युग-दिन की हलचल,
किन्तु थके मन को देता विश्राम निशा का सूनापन ही।
सुख के दिन सपने थे केवल सत्य मनुज ये दुख के दिन ही।

(८)

सुख में थी आसान जिन्दगी इससे उसकी याद सताती,
दुख में कठिन बना है जीवन इसीलिये पीड़ा अकुलाती,
किन्तु याद रख, एक समय है जब अभाव खलता है दुख का,
और खोजने पर भी पीड़ा छाँह न तब दुख की छू पाती,
जीवन का वह निर्मम क्षण यदि आज नहीं तो कल आयेगा,
सँभल मनुज ओ! तुझे छल रहा प्रति पल तेरा मन दुश्मन ही।
सुख के दिन सपने थे केवल सत्य मनुज ये दुख के दिन ही।

(९)

सुख का ऋण तो चुका दिया है तूने लेकर ये दुख के क्षण,
किन्तु शेष है अभी चुकाना सबसे अधिक कठिन दुख का ऋण,

कुछ ले देकर नहीं, किन्तु यह दुख का ऋण चुकता है ऐसे—
अधरों पर मुस्कान सजी हो नयनों से झरते हों जल-कण,
जो हँसकर मुस्काकर दुख का यह ऋण कठिन चुका लेता है,
हार मान लेते हैं उससे सुख-दुख जीवन और मरण भी।
हँसकर दिन काटे सुखके, हँस खेल काट फिर दुखके, दिन भी।

(१०)

कल नभ पर छाई थी ऐसी सघन घनों की काली चादर,
ऐसा लगता था न कभी फिर मुस्का पायेगा शशि सुन्दर,
किन्तु आज ही उस तम का है नाम निशाँ तक शेष न जग में,
जड़ा खड़ा तारक-मणियों से जगमग-जगमग करता अम्बर,
अचरज का मेला है यह जग कभी अँधेरा कभी उजेरा,
मधु में यहाँ छिपा रहता है काल-हलाहल का क्रन्दन भी,
हँसकर दिन काटे सुख के, हँस खेल काट फिर दुखके दिन भी।

(११)

टूटे वे सपने ही जब लख जिन्हें अमरता थी शरमाई,
सूखा वह मधु ही जब जिसके सम्मुख अमर तृषा सकुचाई,
छूट गये वे साथी ही जिनके नयनों की स्नेह-छाँह में—
रोती सी ज़िन्दगी फूल की मुस्कानें भर कर मुस्काई,
दे न सके सब साथ पंथ पर वे अमरत्व-शिला के पुतले,
फिर रे! कब तक घिरा रहेगा जीवन के नभपर, दुख-पान भी।
रहे न जब सुखके ही दिन तो कट जायेंगे दुख के दिन भी।

८–६–१९४७

नई सभ्यता

२७

साँसों में ज़हरीली गैसें, स्वर में माइक्रफ़ोन,
आँखों पर कैमरा, कान पर पहने टेलीफ़ोन,
दुबली-पतली गर्दन में गोली-गोलों के हार,
पँख लगे बाहों में चटपट उड़ने को तैयार,
चितवन में बिजली, चलने में टैंकों का रव-घोष,
बातचीत में उबला पड़ता युद्धों का आक्रोश,

अधरों पर है रक्त-लिपिस्टिक की लोहित मुस्कान,
छिपा सर्जरी का कलाइयों में सारा विज्ञान,
एक हाथ में मौत, दूसरे में लिटरेचर डम्ब
बाँधे हुए कंचुकी में हाइड्रोजन-एटम बम्ब,
छिपा लौह-वस्त्रों में डालर-सा कागजी शरीर,
आसपास चल रही मशीनों, अखबारों की भीड़,
घृणा और बारूद बाँटती हँसती-मुस्काती है,
करो वैलकम नई सभ्यता की देवी आती है!

२८

भूल पाओ तो मुझे तुम भूल जाना।

साथ देखा था कभी जो एक तारा,
आज भी अपनी डगर का वह सहारा,
आज भी हैं देखते हम तुम उसे पर
है हमारे बीच गहरी अश्रु-धारा,
नाव चिर जर्जर नहीं पतवार कर में,
किस तरह फिर हो तुम्हारे पास आना।
भूल पाओ तो मुझे तुम भूल जाना॥

सोच लेना पंथ भूला एक राही,
लख तुम्हारे हाथ में मधु की सुराही,
एक मधु की बूंद पाने के लिए बस,
रुक गया था भूल जीवन की दिशा ही,

आज फिर पथ ने पुकारा जा रहा वह,
कौन जाने अब कहाँ पर हो ठिकाना।
भूल पाओ तो मुझे तुम भूल जाना॥

चाहता है कौन अपना स्वप्न टूटे?
चाहता है कौन पथ का साथ छूटे?
रूप की अठखेलियाँ किसको न भाती,
चाहता है कौन मन का मीत रूठे?
छूटता है साथ, सपने टूटते पर
क्योंकि दुश्मन प्रेमियों का है ज़माना।
भूल पाओ तो मुझे तुम भूल जाना॥

यदि कभी फिर हम मिलें, जीवन-डगर पर,
मैं लिए आँसू लिए तुम हास मनहर,
बोलना चाहो नहीं, तो बोलना मत,
देख लेना किन्तु मेरी ओर क्षण भर,
क्योंकि मेरी राह की मंज़िल तुम्हीं हो,
और जीने का तुम्हीं तो हो बहाना।
भूल पाओ तो मुझे तुम भूल जाना॥

साँझ जब दीपक जलायेगी गगन में,
रात जब सपने सजायेगी नयन में,
पी कहाँ जब जब पुकारेगा पपीहा,
मुस्करायेगी कली जब जब चमन में,
मैं तुम्हारी याद कर रोता रहूँगा,
किन्तु मेरी याद कर तुम मुस्कराना।
भूल पाओ तो मुझे तुम भूल जाना॥

रोज़ ही नभ में घिरेंगे प्यार के घन,
रोज़ फूलेंगे फलेंगे रूप के बन,

रोज़ कलियों के उठा घूँघट शराबी,
गुनगुनायेगा मदिर मधुमास गुन गुन,
फूल कलियाँ वे वही सब कुछ रहेगा,
पर न गायेगी कभी बुलबुल तराना।
भूल पाओ तो मुझे तुम भूल जाना।।

भूल जाना किस तरह सँग सँग तुम्हारे,
छाँह बनकर मैं रहा संध्या-सकारे,
सोचना मत किस तरह मैं जी रहा हूँ,
चल रहा हूँ किस तरह सुधि के सहारे,
किन्तु इतनी, भीख तुमसे माँगता हूँ,
यदि पढ़ो यह गीत इसको गुनगुनाना।
भूल पाओ तो मुझे तुम भूल जाना।।

१०-८-१९४९